मोती लाल सराफ

बनाम

जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य

दिनांक 29, सितम्बर 2006

[न्यायाधिपति एस. बी. सिन्हा एवं न्यायाधिपति दलवीर भंडारी]

भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 21- त्वरित सुनवाई का अधिकार- उन्हीं तथ्यों पर दायर आरोप पत्र पर अपराध का प्रसंज्ञान लिया गया, जिन पर अभियुक्त को अभियोजन स्वीकृति के अभाव में पहले दो बार उन्मोचित किया गया था- कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर याचिका को उच्च न्यायालय द्वारा खारिज किया गया- अभियुक्त की ओर से कोई त्रुटी हुए बिना अभियोजन पक्ष द्वारा एक चौथाई शताब्दी गुजर जाने तक एक भी गवाह को परीक्षित नहीं करवाया गया- अभियुक्त द्वारा अपने हितों की रक्षा करने के लिए उपलब्ध कानूनी उपायों को अपनाना उसे इतने लम्बे समय तक इस तरह से परेशान करने और अपमानित करने का आधार नहीं हो सकता- आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया गया, क्योंकि उसका निरन्तर चलना कानूनी प्रक्रिया का पूर्ण दुरुपयोग था- त्वरित विचारण का अधिकार सभी चरणों जैसे- अनुसंधान, जांच, विचारण, अपील, पुर्नरीक्षण में रहता है, जिससे कि किसी भी संभावित पूर्वाग्रह को जो कि अपराध कारित किये जाने के समय से अंतिम रूप देने तक

अस्वीकार्य और परिहार्य देरी के परिणाम के कारण हो सकता है, को टाला जा सके।

अपीलार्थी प्रत्यर्थी के साथ प्रबंधक के रूप में काम कर रहा था। उसे इस आरोप में गिरफ्तार किया गया था कि उसने अवैध रूप से रिश्वत ली थी और उसके खिलाफ अधीनस्थ न्यायालय में आरोप पत्र दायर किया गया था। अपीलार्थी द्वारा चुनौती दिये जाने पर इन कार्यवाहियों को उच्च न्यायालय द्वारा इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि उसके अभियोजन के लिए स्वीकृति अक्षम व्यक्ति द्वारा दी गई थी। हालांकि अपीलार्थी को उसके खिलाफ शुरू की गई विभागीय कार्यवाही में सेवा से बरखास्त कर दिया था और उसके बाद प्रत्यर्थीगण ने उसके खिलाफ फिर से आरोप पत्र उन्हीं समान तथ्यो के समुह पर इस आधार पर दायर किया कि वह अब सेवा में नहीं था और अभियोजन स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है। तथापि, विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रसंज्ञान लेने के लिए स्वीकृति अनिवार्य थी और अपीलार्थी को उन्मोचित कर दिया। अधीनस्थ न्यायालय के इस आदेश को प्रत्यर्थी द्वारा चुनौती दिये बिना प्रत्यर्थी द्वारा पुनः एक आरोप पत्र विचारण न्यायालय के समक्ष दायर किया, जिससे अपीलार्थी पुनः न्यायिक प्रतिबंध के दायरे में आ गया और उसे न्यायालय में अपनी उपस्थिति के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। अपीलार्थी ने कार्यवाहियों को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय में याचिका

दायर की। हालांकि, उच्च न्यायालय ने याचिका खारिज कर दी। इसलिए यह अपील की गई।

अपीलार्थी ने तर्क दिया कि (i) यह एक कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग का स्पष्ट मामला था।(ii) यह प्रत्येक नागरिक का त्वरित विचारण का अधिकार है और उसके खिलाफ अग्रिम कार्यवाही की निरन्तरता संविधान के अनुच्छेद 21 की मूल भावना के विपरीत थी।

अपील को अनुमति देते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया

1.1. अभियोजन पक्ष द्वारा एक भी गवाह को पिछले 26 साल के दौरान परीक्षित नहीं करवाया गया, अपीलार्थी की और से कोई त्रुटी नहीं होने के बावजूद। [909-ई]

1.2. बेशक अपीलार्थी ने अपने खिलाफ शुरु की गई अवैध कार्यवाही से अपने हितों की रक्षा के लिए उपलब्ध कानूनी उपाय लिया था। लेकिन यह अपने आप में एक चौथाई शताब्दी से अधिक समय तक अपीलार्थी को परेशान करने और अपमानित करने का आधार नहीं हो सकता। [909-ई, एफ]

1.3. राज्य को अभियोजन और विचारण और जारी रखने की अनुमति देना कानूनी की प्रक्रिया का पुरी तरह से दुरूपयोग होगा परिणामस्वरूप आपराधिक कार्यवाही निरस्त की जाती है। [917-ए, बी]

2. त्वरित सुनवाई की अवधारणा को अनुच्छेद 21 में हमारे संविधान के तहत गारंटीकृत और संरक्षित जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के अनिवार्य हिस्से के रूप में पढ़ा गया है। त्वरित विचारण का अधिकार सभी चरणों जैसे- अनुसंधान, जांच, विचारण, अपील, पुर्नरीक्षण में रहता है, जिससे कि किसी भी संभावित पूर्वाग्रह को जो कि अपराध कारित किये जाने के समय से अंतिम रूप देने तक अस्वीकार्य और परिहार्य देरी के परिणाम के कारण हो सकता है, को टाला जा सके। [915 - जी-एच; 916-ए]

पी. रामचंद्र राव बनाम कर्नाटक राज्य, [2002] 4 एस. सी. सी. 578 और करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य, [1994] 3 एस. सी. सी. 569, का अनुकरण किया गया।

अब्दुल रहमान अंतुले बनाम और. एस. नायक, [1992] 1 एस. सी. सी. 225, हुसैनारा खातून (1) बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, [1980] 1 एस. सी. सी. 81, राकेश सक्सेना बनाम राज्य जरिये सी. बी. आई., [1986] पुरक एस.सी.सी. 505, श्रीनिवास गोपाल बनाम केंद्र शासित प्रदेश अरुणाचल प्रदेश, [1988] 4 एस.सी.सी. 36, टी. जे. स्टीफन बनाम पार्ले बॉटलिंग कं. (पी) लिमिटेड, [1988] पुरक एस. सी. सी. 458 और मचंदर बनाम हैदराबाद राज्य, [1955] 2 एस. सी. और. 524, पर निर्भर किया गया।

बीवर्स बनाम हौबर्ट, (1905) 198 यूएस 77,49 एल ईडी 950, 25 एस सीटी 573, पोलार्ड बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका, (1957) 352 यूएस 354, 1 एल ईडी 2 डी 393, 77 एस सीटी 481, स्मिथ बनाम हूई, (1969) 393 यू. एस. 374, 21 एल ईडी 2 डी 607, 89 एस. सी. टी. 575, राष्ट्रमंडल बनाम हैनली, [337 मास 384, 149 एन. ई. 2 डी 608, 66 ए. एल. और. 2 डी 222, सर्ट डेन 358 यू. एस. 850, 3 एल ईडी 2 डी. 85, 79 एस. सी. टी. 79] और राज्य बनाम कैरिलो 4 अरिज़ 170, 16 पी 2 डी 965, संदर्भित।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील सं. 774/2002

जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के धारा 561-ए 50/2000 के तहत याचिका के अंतिम आदेश दिनांक 5.9.2001 से।

अपीलार्थी की और से ए.के. रैना, ए.के. कौल और और.डी. उपध्याय।

प्रत्यर्थीगण की और से एस मेहंदी इमाम, तबरेज अहमद एवं अनीस सुहरावर्दी।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति दलवीर भंडारी द्वारा दिया गया।

त्वरित विचारण जैसा कि अनुच्छेद 21 में पढ़ा गया है, जैसा कि अनुच्छेद 21 में पढ़ा गया है, जीने के और स्वतंत्रता के अधिकार का अनिवार्य हिस्सा है, जो हमारे संविधान के तहत आक्ष्वस्त और संरक्षित है, जो इस अपील के विनिर्णयन में निर्णय के लिए उठा है।

इस अपील के निस्तारण हेतु आवश्यक संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं।

अपीलकर्ता वर्ष 1980 में भारतीय स्टेट बैंक, सुंबल, कश्मीर में प्रबंधक के रूप में कार्यरत था। जम्मू और कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (संक्षेप में जे. तथा के. पीसी एक्ट) की धारा 5 (2) के तहत एक एफआईऔर संख्या 34/1980 अपीलकर्ता के खिलाफ दर्ज की गई थी, जिसके अनुसरण में अपीलकर्ता को इन आरोप में गिरफ्तार किया गया था कि उसने अवैध परितोषण के रूप में 700/- रुपये की राशि प्राप्त की थी, हालांकि कथित राशि उससे बरामद नहीं की गई थी, लेकिन एक गुलाम क़ादिर से बरामद की गई थी।

दिनांक 30.04.1981 को जम्मू-कश्मीर पीसी अधिनियम की धारा 5(2) के तहत विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, श्रीनगर, कश्मीर की अदालत के समक्ष अपीलकर्ता के खिलाफ सीऔरपीसी की धारा 173 के तहत एक चालान दायर किया गया। अपीलकर्ता ने आपराधिक याचिका संख्या 41/1982 में जम्मू और कश्मीर के उच्च न्यायालय के समक्ष अदालत की कार्यवाही की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी कि वह रणबीर दंड संहिता (संक्षेप में, 'आरपीसी') की धारा 21 के तहत एक लोक सेवक नहीं था। इस प्रकार, उन पर जम्मू-कश्मीर पीसी अधिनियम के प्रावधानों के तहत मुकदमा का विचारण नहीं किया जा सकता।

अपीलकर्ता ने यह भी तर्क किया कि न्यायालय को मामले की सुनवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, क्योंकि सक्षम प्राधिकारी से अपीलकर्ता के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए कोई वैध स्वीकृति प्राप्त नहीं की गई थी।

पक्षों को सुनने के बाद कोर्ट ने अभिनिर्धारित कि धारा 21 औरपीसी के तहत एक लोक सेवक था, अपीलकर्ता भारतीय स्टेट बैंक का कर्मचारी होने के नाते वह केंद्र सरकार के स्वामित्व के व्यापारिक व्यवसाय में भी लगा हुआ था।

उच्च न्यायालय एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा कि भारतीय स्टेट बैंक के सेवा नियमों के तहत, पर्यवेक्षी कर्मचारी महाप्रबंधक (संचालन) नहीं था। कथित अपराध के समय अपीलकर्ता एक शाखा प्रबंधक था और उसे नियुक्ति प्राधिकारी या नियुक्ति प्राधिकारी से वरिष्ठ प्राधिकारी द्वारा सेवा से हटाया जा सकता था। ऐसा होने पर, दिनांक 26.05.1981 को अपीलकर्ता के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए महाप्रबंधक (संचालन) द्वारा दी गई स्वीकृति एक अक्षम व्यक्ति द्वारा दी गई थी जिसके पास अपीलकर्ता को सेवा से हटाने का कोई अधिकार क्षेत्र या क्षमता नहीं थी। स्वीकृति देने वाला प्राधिकारी अपीलकर्ता का नियुक्ति प्राधिकारी भी नहीं था। हालाँकि, जम्मू-कश्मीर पीसी अधिनियम की धारा 6 यह प्रावधान करती है कि

अभियोजन शुरू करने के लिए उस व्यक्ति द्वारा जारी स्वीकृति होनी चाहिए, जिसे ऐसे अधिकारी को सेवा से हटाने का अधिकार हो।

उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना कि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि उचित स्वीकृति के बिना कोई भी मुकदमा अदालत के समक्ष नहीं लाया जा सकता है। जम्मू-कश्मीर पीसी अधिनियम की धारा 5(2) के तहत अभियोजन के लिए वैध स्वीकृति का अस्तित्व एक पुर्ववर्ति शर्त थी। स्वीकृति के अभाव में, विचारण न्यायाधीश के पास मामले का संज्ञान लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। अदालत ने अपीलकर्ता द्वारा दायर याचिका को स्वीकार करते हुए, जे एंड के पीसी अधिनियम की धारा 5 (2) और धारा 161 औरपीसी के तहत विचारण न्यायालय में अपीलकर्ता के खिलाफ लंबित कार्यवाही को रद्द कर दिया।

हालाँकि, अपीलकर्ता को उसके खिलाफ शुरू की गई विभागीय कार्यवाही में सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था और बाद में, अपील में, उसकी बर्खास्तगी को सेवा से निष्कासन में बदल दिया गया था।

यह उल्लेख करना उचित होगा कि प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 25.07.1986 को विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, श्रीनगर की अदालत के समक्ष अपीलकर्ता के खिलाफ फिर से उन्हीं तथ्यों के समुह पर चालान दायर किया कि अपीलकर्ता अब सेवा में नहीं है और अभियोग चलाने की स्वीकृति की अब जरूरत नहीं रह जाती है।

श्रीनगर में दीर्घकालिक उग्रवाद के कारण अल्पसंख्यक समुदाय का बड़े पैमाने पर पलायन हुआ। अपीलकर्ता अल्पसंख्यक समुदाय का सदस्य होने के कारण दिनांक 23.09.1998 को जम्मू चला गया। अपीलकर्ता ने जम्मू में जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के समक्ष मामले को विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, श्रीनगर की अदालत से विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, जम्मू की अदालत में स्थानांतरित करने के लिए याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 23.09.1998 द्वारा मामले को स्थानांतरित कर दिया।

अपीलकर्ता ने इस दलील पर मुकदमे को रद्द करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया कि अपीलकर्ता को स्वीकृति के बिना अभियोजित नहीं किया जा सकता।

विद्वान विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, जम्मू ने पक्षों को सुनने के बाद दिनांक 12.03.1999 के आदेश द्वारा अपीलकर्ता द्वारा दायर आवेदन को स्वीकार कर लिया और उसे जम्मू-कश्मीर पीसी अधिनियम की धारा 5(2) के साथ धारा 161 औरपीसी के तहत अपराध से उन्मोचित कर दिया। विचारण न्यायालय ने अपने आदेश में यह कहा कि सतर्कता संगठन, कश्मीर ने यह जानकारी होने के बावजूद कि पहले दी गई स्वीकृति रद्द कर दी गई थी, इस दलील पर कि आरोपी को सेवा से हटा दिया गया था और जम्मू-कश्मीर पीसी अधिनियम की धारा 6 के तहत

अपेक्षित किसी स्वीकृति की आवश्यकता नहीं थी, वर्ष 1986 में पुनः आरोप पत्र पेश किया।

पक्षों को सुनने के बाद विशेष न्यायाधीश ने कहा कि इसमें कोई विवाद नहीं है कि आरोपी पर मुकदमा चलाने के लिए पूर्व में दी गई स्वीकृति सक्षम प्राधिकारी द्वारा नहीं दिए जाने के कारण उच्च न्यायालय ने रद्द कर दी थी। अब भी, अपीलकर्ता के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए सक्षम प्राधिकारी से कोई नई स्वीकृति नहीं ली गई है। जब तत्काल आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया, तो कोई स्वीकृति अस्तित्व में नहीं थी। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने जम्मू-कश्मीर पीसी अधिनियम की धारा 6 की व्याख्या की और कहा कि, उक्त धारा के अनुसार, अपराध का संज्ञान लेने के लिए स्वीकृति अनिवार्य शर्त थी। हम अधिनियम की धारा 6 को पुनः प्रस्तुत करना उचित समझते हैं । इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:

> "6. अभियोजन के लिए आवश्यक पूर्व स्वीकृति (1) कोई भी न्यायालय रणबीर दंड संहिता की धारा 161 या धारा 165 के तहत या इस अधिनियम की धारा 5 की उप-धारा (2) के तहत एक लोक सेवक द्वारा किये गये दंडनीय अपराध का प्रसंज्ञान नहीं लेगा, सिवाय पूर्ववर्ती स्वीकृति के।

(ए) ऐसे व्यक्ति के मामले में जो सरकार द्वारा या उसकी स्वीकृति के बिना अपने कार्यालय पद से हटाया नहीं जा सकता,

(बी) किसी अन्य व्यक्ति के मामले में, उसे उसके कार्यालय से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी।

(2) जहां किसी भी कारण से कोई संदेह उत्पन्न होता है कि क्या उप-धारा (1) के तहत अपेक्षित पूर्ववर्ती स्वीकृति सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा दी जानी चाहिए, ऐसी स्वीकृति सरकार या प्राधिकारी द्वारा दी जाएगी जो सक्षम होगी उस समय लोक सेवक को उसके कार्यालय से हटाना जब अपराध किए जाने का आरोप लगाया गया था।"

न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आरोप पत्र पेश होने के समय आरोपी सेवा में था या नहीं, लेकिन तथ्य यह है कि उसने अपने आधिकारिक कार्यों का निर्वहन करते समय आपराधिक कदाचार किया था और अपीलार्थी के विरूद्ध बिना स्वीकृति के लिया गया प्रसंज्ञान कानून की नजरों में गलत था। अभियुक्त के खिलाफ अपराध का संज्ञान लेने के लिए स्वीकृति एक अनिवार्य शर्त थी।

अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया था कि विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, जम्मू द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.03.1999 को

चुनौती नहीं दी गई थी और इसलिए, यह पक्षकारों के बीच अंतिम और बाध्यकारी हो गया।

आगे प्रस्तुत किया गया कि यह आश्चर्यजनक है कि विशेष न्यायाधीश, जम्मू द्वारा पारित आदेश की वैधता को चुनौती दिए बिना, दिनांक 12.08.2000 को विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, जम्मू के समक्ष तथ्यों के समान तथ्यों के समुह पर अपीलकर्ता के खिलाफ प्रत्यर्थी द्वारा एक चालान दायर किया गया था। आदेश दिनांक 12.08.2000 के आधार पर अपीलकर्ता फिर से न्यायिक प्रतिबंध के तहत आ गया और उसे अदालत में अपनी उपस्थिति के लिए जमानतदार पेश करने के लिए कहा गया।

अपीलकर्ता ने विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, जम्मू के समक्ष लंबित कार्यवाही को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका दायर की, जिसका केस संख्या 34/1980 है। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा उचित परिप्रेक्ष्य में उठाए गए तर्कों की सराहना किए बिना अपने फैसले में याचिका खारिज कर दी। अपीलकर्ता ने अब उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 5.09.2001 को चुनौती दी है। अपीलकर्ता ने प्रस्तुत किया कि पहले उच्च न्यायालय और बाद में विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, जम्मू द्वारा आरोपमुक्त करने के आदेश अंतिम और बाध्यकारी हो गए थे, क्योंकि प्रत्यर्थीगण ने उक्त आदेशों को चुनौती नहीं

दी थी। यह भी आरोप लगाया गया है कि प्रत्यर्थीगण को अपीलकर्ता के खिलाफ तीसरी बार उसी कार्रवाई के कारण और समान तथ्यों और परिस्थितियों पर मुकदमा चलाने की स्वीकृति नहीं दी जा सकती है। अपीलकर्ता के अनुसार, यह कानून की प्रक्रिया के घोर दुरुपयोग का स्पष्ट मामला था। उन्होंने आगे कहा कि प्रतिवादियों को उसी कार्रवाई के कारण और समान तथ्यों और परिस्थितियों पर तीसरी बार नया चालान दाखिल करने की अनुमति कैसे दी जा सकती है? अपीलकर्ता के अनुसार, आक्षेपित आदेश गंभीर कमज़ोरियों से ग्रस्त है। उन्होंने कहा कि उच्च न्यायालय को इस बात की सराहना करनी चाहिए थी कि अपीलकर्ता की याचिका को खारिज करके उच्च न्यायालय ने वास्तव में अपने आदेश की समीक्षा की है। आपराधिक कानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था जो न्यायालय को अपने आदेश की समीक्षा करने में सक्षम बनाता।

अपीलकर्ता ने आगे कहा कि प्रतिवादियों द्वारा बिना किसी स्वीकृति के बार-बार चालान दाखिल करने से 26 वर्षों से अधिक समय तक अत्यधिक मानसिक, शारीरिक, भावनात्मक तनाव और उत्पीड़न हुआ है। अपीलकर्ता ने इस आधार पर भी राहत मांगी कि त्वरित सुनवाई की मांग करना प्रत्येक नागरिक का अधिकार है। अपीलकर्ता के खिलाफ आगे की कार्यवाही जारी रखना संविधान के अनुच्छेद 21 की मूल भावना के विपरीत है और परिणामस्वरूप, आक्षेपित निर्णय रद्द किए जाने योग्य है।

अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत विशेष अनुमति याचिका में, इस न्यायालय ने कारण बताओ नोटिस जारी किया। उस कारण बताओ नोटिस के अनुसरण में, प्रत्यर्थीगण की ओर से जम्मू-कश्मीर के सतर्कता संगठन के महानिदेशक/आयुक्त द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया था। यह उल्लेख करना उचित होगा कि प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रस्तुत तीन चालानों के संबंध में विशेष अनुमति याचिका में शामिल बुनियादी तथ्यों से इनकार नहीं किया गया है। स्वीकार्य रूप से पिछले 26 वर्षों से अधिक समय में अभियोजन पक्ष द्वारा एक भी गवाह से पूछताछ नहीं की गई है। बेशक, अपीलकर्ता ने प्रत्यर्थीगण द्वारा उसके खिलाफ शुरू की गई अवैध कार्यवाही के खिलाफ अपने हितों की रक्षा के लिए उपलब्ध कानूनी उपाय अपनाए थे, लेकिन यह अपने आप में अपीलकर्ता को एक चौथाई सदी से अधिक समय तक परेशान करने और अपमानित करने का आधार नहीं हो सकता है।

यह प्रस्तुत किया गया कि अपीलकर्ता पर वैध स्वीकृति के बिना मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। उच्च न्यायालय के पिछले आदेश और विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निरोधक, जम्मू के आदेश को रद्द कराए बिना नया चालान दाखिल करना प्रत्यर्थीगण के लिए न्यायसंगत नहीं था। यह आग्रह किया गया कि अपीलकर्ता के खिलाफ शुरू की गई कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना थी और परिणामस्वरूप रद्द किए जाने योग्य थी।

मौजूदा मामले में अपीलकर्ता लगभग ढाई दशक से अधिक समय से आपराधिक मुकदमे का सामना कर रहा है। त्वरित सुनवाई संविधान के अनुच्छेद 21 का अभिन्न अंग है। वर्तमान मामले में, पिछले छब्बीस वर्षों में, अभियोजन पक्ष का एक भी गवाह परीक्षित नहीं हुआ है। यह आग्रह किया गया कि एक से अधिक कारणों से, मौजूदा मामले में अभियोजन को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती। अपीलकर्ता के खिलाफ प्रत्यर्थीगण द्वारा की गई कार्यवाही स्पष्ट रूप से कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग थी।

इस न्यायालय ने बार-बार इस बात पर जोर दिया था कि त्वरित सुनवाई संविधान के अनुच्छेद 21 के दायरे में निहित है।

इस न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले अब्दुल रहमान अंतुले बनाम औरएस नायक (1992) 1 एससीसी 225 के मामले का संदर्भ दिया गया। इस मामले में, न्यायालय ने माना कि त्वरित सुनवाई का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित निष्पक्ष, न्यायपूर्ण और उचित प्रक्रिया का एक हिस्सा था। इस मामले में, इस न्यायालय ने कहा कि प्रत्येक मामले का निर्णय उसके अपने तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। इस मामले में, इस न्यायालय ने आगे कहा कि आपराधिक कार्यवाही के समापन के लिए बाहरी समय सीमा तय करना उचित और व्यवहार्य नहीं था।

उक्त मामले में यह प्रस्तुत किया गया था कि भारतीय संविधान के निर्माताओं को संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में छठे संशोधन के बारे में पता था जो स्पष्ट शब्दों में 'अभियुक्त' के खिलाफ शीघ्र मुकदमा चलाने का अधिकार प्रदान करता है। फिर भी, भारतीय संविधान में समान प्रावधान शामिल नहीं किया गया था। उस मामले में यह प्रस्तुत किया गया था कि समय की कोई बाहरी सीमा निर्धारित करना न तो स्वीकार्य है, न संभव है और न ही वांछनीय है। उच्चतम न्यायालय, अमेरिका ने भी ऐसा करने से इनकार कर दिया था।

हम हुसैनारा खातून (प्रथम) बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य (1980) 1 एससीसी 81 के मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई प्रासंगिक टिप्पणियों को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत करना उचित समझते हैं:

> "हमें लगता है कि हमारे संविधान के तहत भी, हालांकि त्वरित सुनवाई को विशेष रूप से मौलिक अधिकार के रूप में सूचीबद्ध नहीं किया गया है, लेकिन यह अनुच्छेद 21 की व्यापक विस्तार और सामग्री में निहित है जैसी की व्याख्या की गई है कि अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को उसके जीवन या स्वतंत्रता से वंचित न करने का मौलिक अधिकार प्रदान करता है, सिवाय उस अनुच्छेद की आवश्यकता के अनुसार कि एक प्रक्रिया का कुछ अंश कानून द्वारा निर्धारित किया

जाना चाहिए। लेकिन यह कि प्रक्रिया "उचित, निष्पक्ष और न्यायसंगत" होनी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति को ऐसी प्रक्रिया के तहत उसकी स्वतंत्रता से वंचित किया जाता है जो "उचित, निष्पक्ष या न्यायसंगत" नहीं है, तो ऐसा अभाव अनुच्छेद 21 के तहत उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन होगा। वह इस तरह के मौलिक अधिकार को लागू करने और अपनी रिहाई सुनिश्चित करने का हकदार होगा। अब स्पष्ट रूप से किसी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता से वंचित करने के लिए कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया 'उचित, निष्पक्ष या उचित' नहीं हो सकती है जब तक कि वह प्रक्रिया ऐसे व्यक्ति के अपराध के निर्धारण के लिए त्वरित सुनवाई सुनिश्चित नहीं करती है। कोई भी प्रक्रिया जो यथोचित त्वरित सुनवाई सुनिश्चित नहीं करती है उसे "उचित, निष्पक्ष या न्यायसंगत" नहीं माना जा सकता है और यह अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा। इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि त्वरित सुनवाई, और त्वरित सुनवाई से हमारा तात्पर्य उचित रूप से शीघ्र सुनवाई से है जो कि अनुच्छेद 21 में निहित जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का एक अभिन्न और आवश्यक हिस्सा है।"

कई मामलों में, इस न्यायालय ने विशिष्ट तथ्यों और व्यक्तिगत मामलों की परिस्थितियों पर विचार करते हुए कार्यवाही को रद्द कर दिया था।

राकेश सक्सेना बनाम राज्य जरिये सीबीआई (1986) सप्लिमेंट एससीसी 505, में इस न्यायालय ने इस आधार पर कार्यवाही को रद्द कर दिया कि अपीलकर्ता के मामले में छह साल से अधिक समय बीत जाने के बाद अभियोजन जारी रखना, उस अपीलार्थी के मामले में जो कि बैंक में विदेशी मुद्रा प्रभाग में पदानुक्रम के सबसे निचले पायदान पर केवल एक व्यापारी था, विशेषतः आरोपित किये गये अपराध की जटिलता को देखते हुए।

इस न्यायालय ने श्रीनिवास गोपाल बनाम केंद्र शासित प्रदेश अरुणाचल प्रदेश (1988) 4 एससीसी 36 के मामले में अनुसंधान और मुकदमा शुरू होने में देरी के आधार पर कार्यवाही रद्द कर दी। अनुसंधान नवंबर, 1976 में शुरू हुआ और सितंबर 1977 में अनुसंधान पूरा होने पर मामला दर्ज कर मार्च, 1986 में न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया।

टीजे स्टीफन बनाम पार्ले बॉटलिंग कंपनी (पी) लिमिटेड (1988) पूरक एससीसी 458, इस अदालत ने आयात और निर्यात (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 की धारा 5 के तहत आरोपियों के खिलाफ आरोपों को खारिज कर दिया। अदालत ने माना कि छब्बीस साल बीत जाने के बाद

अभियोजन शुरू करने और मुकदमा आगे बढ़ाने की अनुमति देना न्याय के हित में नहीं होगा, भले ही आरोपियों में से एक अपनी दुर्भावनापूर्ण रणनीति के कारण हुई अधिकांश देरी के लिए स्वयं जिम्मेदार था।

मचंदर बनाम हैदराबाद राज्य (1955) 2 एससीऔर 524 में, इस न्यायालय ने कहा कि यद्यपि यह देखना न्यायालय का कर्तव्य है कि कोई भी दोषी व्यक्ति बच न जाये, लेकिन फिर भी यह देखना उसका कर्तव्य है कि न्याय में देरी न हो और आरोपित व्यक्ति को अनिश्चित काल तक परेशान नहीं किया जाए। न्यायालय ने कहा कि अभियोजन और आरोपी के बीच भी संतुलन कायम रहना चाहिए। इस मामले के तथ्यों में, न्यायालय ने पहले ही खर्च हो चुके समय और उस मामले की अन्य प्रासंगिक परिस्थितियों के कारण विचारण का आदेश देने से इनकार कर दिया।

एऔर अंतुले (सुप्रा) के मामले में, इस न्यायालय ने दिशानिर्देशों के रूप में कार्य करने के लिए प्रस्ताव दिए थे। इस न्यायालय ने माना कि ये प्रस्ताव संपूर्ण नहीं हैं। सभी स्थितियों का पूर्वाभास करना कठिन है, न ही कोई कठोर एवं निश्चित नियम बनाना संभव है। इस न्यायालय ने आगे इस प्रकार कहा:

> "(1) संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित प्रक्रिया आरोपी को त्वरित सुनवाई

का अधिकार देती है। त्वरित सुनवाई का अधिकार अभियुक्त का अधिकार है। तथ्य यह है कि त्वरित सुनवाई भी सार्वजनिक हित में है या कि यह सामाजिक हित में भी कार्य करता है, इससे यह अभियुक्त के अधिकार से कम नहीं हो जाता है। यह सभी संबंधितों के हित में है कि परिस्थितियों में अभियुक्त के अपराध या निर्दोषता का जितनी जल्दी हो सके निर्धारित की जाए।

(2) अनुच्छेद 21 से प्राप्त त्वरित सुनवाई के अधिकार में सभी चरण शामिल हैं, अर्थात् अनुसंधान, जांच, विचारण, अपील, पुनरीक्षण और पुन: परीक्षण का चरण। इस प्रकार, इस न्यायालय ने इस अधिकार को समझा है और प्रतिबंधित दृष्टिकोण अपनाने का कोई कारण नहीं है।

(3) अभियुक्त के दृष्टिकोण से त्वरित सुनवाई के अधिकार में अंतर्निहित चिंताएँ हैं:

(ए) रिमांड की अवधि और पूर्व-दोषसिद्धि हिरासत यथासंभव कम होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, अभियुक्त को उसकी दोषसिद्धि से पहले अनावश्यक या अनुचित रूप से लंबे समय तक कारावास में नहीं रखा जाना चाहिए;

(बी) अनावश्यक रूप से लंबे समय तक जांच, पूछताछ या परीक्षण के परिणामस्वरूप उसके व्यवसाय और शांति में चिंता, व्यय और अशांति न्यूनतम होनी चाहिए; और

(सी) अनुचित देरी के परिणामस्वरूप अभियुक्त की खुद का बचाव करने की क्षमता क्षीण हो सकती है, चाहे वह मृत्यु, गायब होने या गवाहों की अनुपलब्धता या अन्यथा के कारण हो।

xxx xxxx xxxx

xxx xxxx xxxx"

इस न्यायालय ने यह भी कहा कि यह निर्धारित करते समय कि क्या वास्तव में अनुचित देरी हुई है, किसी को सभी संबंधित परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए, जिसमें अपराध की प्रकृति, अभियुक्तों और गवाहों की संख्या, संबंधित अदालत का कार्यभार, प्रचलित स्थानीय परिस्थितियाँ आदि शामिल हैं, जिन्हें व्यवस्थित विलंब कहा जाता है। कुल मिलाकर सार और तात्पर्य यह है कि अपराध की सुनवाई के लिए कोई समय सीमा तय करना न तो उचित है और न ही व्यावहारिक है। प्रत्येक मामले का निर्णय उसके अपने तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए।

यह न्यायालय, पी. रामचन्द्र राव बनाम कर्नाटक राज्य (2002) 4 एससीसी 578 के मामले में, सात-न्यायाधीशों की पीठ के बहुमत के अनुसार, निष्कर्ष पर पहुंचा और घोषित किया कि यह न्यायालय कानून की व्याख्या कर सकता है और इस प्रक्रिया में किसी भी कमी को दूर कर सकता है, विधान में कमियों को भर सकता है और यहां तक कि उसके समक्ष मौजूद विवाद के संदर्भ में एक कानून भी बना सकता है। लेकिन यह, विधायिका की तरह सामान्य अनुप्रयोग का एक नया कानून घोषित नहीं कर सकता है। इस मामले में, न्यायालय ने अंतुले के मामले (सुप्रा) पर भरोसा किया और किसी भी समय सीमा को तय करने से परहेज किया, इसलिए नहीं कि न्यायालय के पास ऐसा करने की कोई शक्ति नहीं थी, बल्कि इसलिए कि ऐसा करना "न तो उचित था और न ही व्यावहारिक" था। न्यायालय ने कहा कि चूंकि संविधान पीठ द्वारा निर्धारित कानून अभी भी लागू है, इसलिए छोटी पीठ द्वारा समय सीमा तय करने के लिए उसके अल्पीकरण में की गई किसी भी घोषणा को बाध्यकारी शर्तों के सिद्धांत के आधार पर खारिज कर दिया जाता है। न्यायालय ने यह भी निर्धारित किया कि देरी के प्रश्न पर न्यायालय को व्यक्तिगत मामले की परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए निर्णय लेना होगा। न्यायालय ने कहा कि किसी मामले की परिस्थितियों की समग्रता से यह पता लगाने के लिए किसी व्यक्तिगत मामले को अदालत के विवेकपूर्ण विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए कि क्या किसी दिए गए समय तक

लिया गया समय अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है और यदि हां, तो विशेष कार्यवाही को समाप्त करने के लिए, और यदि नहीं, तो आगे बढ़ने के लिए। परीक्षण यह है कि क्या कार्यवाही या मुकदमा इतने लंबे समय तक लंबित रहा है कि अत्यधिक देरी को वैध रूप से दमनकारी और अनुचित कहा जा सके।

यह उल्लेख करना उचित होगा कि अमेरिकी संविधान के छठे संशोधन में कहा गया है कि "सभी आपराधिक अभियोगों में, आरोपी को उस राज्य और जिले की निष्पक्ष ज्युरी द्वारा त्वरित और सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार प्राप्त होगा जहां की अपराध किया गया हो।" "ये गारंटी संविधान द्वारा संरक्षित सबसे बुनियादी अधिकार एवं मौलिक स्वतंत्रताएं है जो अधिकारों के विधेयक में सन्निहित है। चौदहवें संशोधन के उचित प्रक्रिया खंड ने उन्हें सभी राज्यों पर लागू कर दिया।"

संवैधानिक गारंटी आरोपी और समाज दोनों की सुरक्षा के लिए है। यहां तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका में भी जहां त्वरित सुनवाई को आरोपी के अत्यंत मूल्यवान अधिकार के रूप में मान्यता देने वाला एक संवैधानिक संशोधन किया गया है, तब भी न्यायालय ने माना कि आपराधिक मुकदमे के समापन के लिए कोई समय सीमा तय नहीं की जा सकती है। यह माना गया है कि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

एक प्रसिद्ध अमेरिकी मामले बीवर्स बनाम हाउबर्ट (1905) 198 यूएस 77, 49 एल एड 950, 25 एस सीटी 573, में यह माना गया कि त्वरित सुनवाई का अधिकार आवश्यक रूप से सापेक्ष है, और यह देरी के अनुरूप है और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के एक अन्य मामले में, पोलार्ड बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका 1957) 352 यूएस 354, 1 एल एड 2 डी 393, 77 एस सीटी 481, यह माना गया था कि अभियोजन पूरा करने में देरी अधिकारों के असंवैधानिक वंचित्ता के बराबर है जो परिस्थितियों पर निर्भर करती है और देरी उद्देश्यपूर्ण या दमनकारी नहीं होनी चाहिए।

यह माना गया कि "त्वरित सुनवाई की संवैधानिक गारंटी एक महत्वपूर्ण सुरक्षा है। (1) सुनवाई से पहले अनुचित और दमनकारी कैद को रोकने के लिए, (2) सार्वजनिक आरोप के साथ चिंता और चिंता को कम करने के लिए, और (3) संभावनाओं को सीमित करने के लिए लंबी देरी से आरोपी की खुद का बचाव करने की क्षमता ख़राब हो जाएगी। पहले के निर्णयों में व्यक्त विचारों का पालन करते हुए, न्यायालय ने दोहराया कि त्वरित सुनवाई का अधिकार आवश्यक रूप से सापेक्ष है; यह देरी के अनुरूप है; कि क्या अभियोजन पूरा करने में देरी हुई है अधिकारों का असंवैधानिक हनन परिस्थितियों पर निर्भर करता है और देरी उद्देश्यपूर्ण या दमनकारी नहीं होनी चाहिए।"

स्मिथ बनाम हूई (1969) 393 यूएस 374, 21 एल एड 2 डी 607, 89 एस सीटी 575, में यह माना गया कि छठा संशोधन गारंटी देता है कि त्वरित सुनवाई का अधिकार आपराधिक न्याय की कम से कम तीन बुनियादी मांगों की रक्षा के लिए आवश्यक है: (1) मुकदमे से पहले अनुचित और दमनकारी कारावास को रोकने के लिए, (2) सार्वजनिक आरोप के साथ चिंता और चिंता को कम करने के लिए, और (3) उन संभावनाओं को सीमित करने के लिए कि लंबी देरी से आरोपी की खुद का बचाव करने की क्षमता ख़राब हो जाएगी।

इंग्लैंड में, मैग्ना कार्टा के समय से, एक अभियुक्त कम से कम सैद्धांतिक रूप से, त्वरित सुनवाई का अधिकार उपभोग करता था, जिसे की गोल डिलीवरी कमीशन द्वारा सुरक्षित किया गया था, जिसके तहत जेलों को हर साल कम से कम दो बार खाली किया जाता था।

कॉमनवेल्थ बनाम हैनली [337 मास 384, 149 एनई 2 डी 608, 66 एएलऔर 2 डी 222, सर्टिफिकेट डेन 358 यूएस 850, 3 एल एड 2 डी 85, 79 एस सीटी 79] में, शीघ्र सुनवाई की गारंटी तीन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए रखी गई है: यह अभियुक्त को सुरक्षा प्रदान करता है, यदि उसे लंबे समय तक कारावास में मुकदमे की प्रतीक्षा के लिए जेल में रखा जाता है; यह उसे अपराध के किसी अपरीक्षित आरोप पर होने वाली चिंता और सार्वजनिक संदेह से छुटकारा दिलाता है; और परिसीमा क़ानून की तरह,

यह उसे इतना लंबा समय बीत जाने के बाद मुकदमे के खतरों के संपर्क में आने से रोकता है कि उसकी बेगुनाही साबित करने के साधन खो गए हों।

राज्य बनाम कैरिलो [41 एरिज़ 170, 16 पी2 डी 965] के मामले में, यह माना गया है कि एक अभियुक्त जिसे त्वरित सुनवाई से वंचित कर दिया गया है, या जिसे एक कार्यान्वयन क़ानून द्वारा आवश्यक समय के भीतर सुनवाई के लिए नहीं लाया गया है, वह आम तौर पर उस आधार पर अभियोजन को खारिज करने का कदम उठाया जाता है।

आपराधिक अभियोजन के संघीय नियमों का नियम 48(बी) बर्खास्तगी का अधिकार देता है कि यदि ग्रैंड ज्युरी के सामने आरोप पेश करने में या किसी आरोपी के खिलाफ सूचना दाखिल करने में अनावश्यक देरी होती है, जिसे जिला अदालत में जवाब देने के लिए रखा गया है, या यदि कोई है किसी अभियुक्त को विचारण में लाने में अनावश्यक देरी। त्वरित सुनवाई के छठे संशोधन के अधिकार को लागू करने में इस नियम का वही प्रभाव है, जो कांग्रेस के एक अधिनियम का होता।

इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य (1994) 3 एससीसी 569 के मामले में उल्लेख किया है कि त्वरित सुनवाई का अधिकार मैग्ना कार्टा के प्रावधान से लिया गया है। इस सिद्धांत को 1776 के वर्जीनिया अधिकारों की घोषणा में भी शामिल किया गया है और वहां से संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के छठे संशोधन में शामिल

किया गया है, जिसमें कहा गया है, "सभी आपराधिक मुकदमों में, आरोपी को त्वरित और सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार प्राप्त होगा..."। इस संबंध में, यह बताया जा सकता है कि 1974 का एक संघीय अधिनियम है जिसे 'स्पीडी ट्रायल एक्ट' कहा जाता है, जो अभियोजन में प्रमुख घटनाओं, जैसे सूचना, अभियोग, अभियोग पत्र, आपराधिक मुकदमा के अभियोजन को अंजाम देने के लिए समय-सीमा निर्धारित करता है।

इस मामले में, इस न्यायालय ने आगे कहा: "त्वरित सुनवाई का अधिकार न केवल अनुचित और दमनकारी कारावास को रोकने, आरोप के साथ चिंता और चिंता को कम करने और अभियुक्त को अपना बचाव करने की क्षमता को ख़राब करने की संभावना को सीमित करने के लिए एक महत्वपूर्ण सुरक्षा है। लेकिन त्वरित सुनवाई प्रदान करने में सामाजिक हित भी है। यह अधिकार हाल ही में सक्रिय हुआ है और अदालतों ने मौलिक अधिकारों के नए द्वार खोलने वाले निर्णयों की एक श्रृंखला निर्धारित की है। वास्तव में, बहुत सारे मामले अत्यधिक और अनुचित देरी के आधार पर कार्यवाही को रद्द करने के लिए अदालतों के समक्ष आ रहे हैं, जिसमें कहा गया है कि इस अधिकार के आह्वान के लिए औपचारिक अभियोग या आरोप की प्रतीक्षा करने की भी आवश्यकता नहीं है।"

त्वरित सुनवाई की अवधारणा को अनुच्छेद 21 में हमारे संविधान के तहत गारंटीकृत और संरक्षित जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के

एक अनिवार्य भाग के रूप में पढ़ा जाता है। शीघ्र सुनवाई का अधिकार गिरफ्तारी और परिणामी कारावास द्वारा लगाए गए वास्तविक प्रतिबंध से शुरू होता है और सभी चरणों, अर्थात् जांच, पूछताछ, परीक्षण, अपील और पुनरीक्षण के चरण में जारी रहता है ताकि किसी भी संभावित पूर्वाग्रह जो कि अनुचित और परिहार्य देरी अपराध के शुरू होने से लेकर अंजाम तक पहुंचने तक के परिणामस्वरूप हो सकता है, को टाला जा सके।

हुसैनारा खातून (आई) (सुप्रा) में इस न्यायालय ने आगे इस प्रकार देखा:

> "कोई भी प्रक्रिया जो यथोचित त्वरित सुनवाई सुनिश्चित नहीं करती है उसे 'उचित, निष्पक्ष या न्यायसंगत' नहीं माना जा सकता और यह अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा। इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि त्वरित सुनवाई, और त्वरित सुनवाई से हमारा तात्पर्य उचित रूप से त्वरित सुनवाई, जो अनुच्छेद 21 में निहित जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का एक अभिन्न और आवश्यक हिस्सा है। हालांकि, सवाल यह उठता है कि यदि किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति को त्वरित सुनवाई से वंचित कर दिया गया और विलंबित विचारण के

परिणामस्वरूप अनुच्छेद 21 के तहत उसके मौलिक अधिकार के उल्लंघन में कारावास के कारण उसकी स्वतंत्रता से वंचित कर दिया गया हो तो परिणाम क्या होगा? क्या वह इस आधार पर अपने खिलाफ लगाए गए आरोप से बिना शर्त रिहा होने का हकदार होगा कि उस पर मुकदमा चलाया जा रहा है तथा अनुचित रूप से लंबी अवधि तक विचारण किये जाने और ऐसे विचारण के बाद उसे दोषी ठहराना, अनुच्छेद 21 के तहत उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन होगा।"

मेनका गांधी (सुप्रा) के मामले के पश्चात इस न्यायालय ने कई मामलों में दोहराया है कि त्वरित सुनवाई अनुच्छेद 21 में निहित जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के पहलुओं में से एक है और कानून को 'उचित, न्यायसंगत और निष्पक्ष' प्रक्रिया सुनिश्चित करनी चाहिए, जिसका फैसले के बाद रचनात्मक अर्थ हो।

जब हम इस मामले की उपरोक्त निर्णय और अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के उपरोक्त निर्णयों के आलोक में जांच करते हैं, तो यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि अदालत द्वारा कोई सामान्य दिशानिर्देश तय नहीं किया जा सकता है और प्रत्येक मामले की जांच अपने तथ्यों के आधार पर की जानी चाहिए और परिस्थितियाँ।

अनुचित देरी को रोकना अदालत और अभियोजन पक्ष का परम कर्तव्य है।

त्वरित सुनवाई के अधिकार का उद्देश्य उत्पीड़न से बचना और अदालतों तथा अभियोजन पक्ष पर उचित कार्यवाही के साथ आगे बढ़ने की बाध्यता लगाकर देरी को रोकना है।

आपराधिक न्याय प्रशासन को प्रभावी, जीवंत और सार्थक बनाने के लिए भारत संघ, राज्य सरकारों और सभी संबंधित प्राधिकारियों को तुरंत आवश्यक कदम उठाने चाहिए ताकि त्वरित सुनवाई के अभियुक्तों का महत्वपूर्ण संवैधानिक अधिकार केवल कागजात या मात्र औपचारिकता तक सीमित न रह जाए।

वर्तमान मामले में पिछले छब्बीस वर्षों में अभियोजन पक्ष द्वारा अपीलकर्ता की ओर से कोई चूक हुए बिना एक भी गवाह परिक्षित नही हुआ हो। राज्य को आगे भी अभियोजन और सुनवाई जारी रखने की अनुमति देना कानून की प्रक्रिया का पूर्ण दुरुपयोग होगा। परिणामस्वरूप, आपराधिक कार्यवाही रद्द की जाती है। तद्नुसार अपील स्वीकार की जाती है और उसका निपटारा किया जाता है।

वी.एस. अपील स्वीकार।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल (सुवास) की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी पुरण सिंह मीणा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।